''भारतीय किसानों की व्यथा व स्थिती का चित्रण''

प्रा. संपतराव सदाशिव जाधव

जयवंत महाविद्यालय, इचलकरंजी, ता. हातकणंगले, जि. कोल्हापुर

.....

प्रस्तावना –

भारतीय संस्कृति का मूलाधार कृषि रहा है । या यूँ कहे कि भारतीयता की मूल पहचान कृषि तथा किसान है, तो इसमें अतिश्योक्ति नहीं होगी । भारत देश कृषिप्रधान देश है । यहाँ की अधिकांश जनता कृषि तथा कृषि से व्यवसाय पर निर्भर है । कृषि इस देश की बुनियाद तथा नींव है । आज की स्थिति ऐसी है कि परिवर्तन को इस दौर में किसान भी परिवर्तित होता दिखाई देता है । भूमंडलीकरण तथा वैश्विकरण के इस युग में किसान की स्थिति कहीं अच्छी तो कहीं बद–से–बदतर होती दिखाई देती है, यह चिंता का विषय हो सकता है । समय रहते हमें इस विषय को गंभीरता से विचार कर इस पर उपाय करने होंगे अन्यथा देश के लिए यह सबसे बड़ा चिंतनीय प्रश्न होगा । जिसका उत्तर निरूत्तर होगा । किसान के विषय को लेकर ऐसी संगोष्ठियों के आयोजन अधिक–से–अधिक होने चाहिए । जिससे किसान की हालत और उसके संघर्ष पर चर्चा–विमर्श हो सके । जिसमें मौलिक चिंतन हो ।

कृषि शब्द या अवस्था मानव जाति के आदिम अवस्था में खेती का किसी प्रकार का कोई स्वरूप नहीं था । खेती मानव से बाद में जुड़ी । धीरे–धीरे मनुष्य के खाद्यभाव को दूर करने के प्रयास के फलस्वरूप खेती की उत्पत्ति हुई है ।

सही मायनों में भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मूल आधार कृषि रहा है । भारत एक कृषि–प्रधान देश है । यहाँ की अधिकांश जनता कृषि या कृषि से संलग्न जीवनयापन करती है । अर्थात कृषि के चारों ओर ही संपूर्ण ग्रामीण व्यवस्था, आर्थिक और सामाजिक संरचना केंद्रित है । यदि हमें भारतीयता का मूल स्वरूप देखना हो तो वह हमें गाँवों में मिलता है । खेतों में बोए गए बीज का पूर्णत्व जब वह धीरे–धीर फसल बनर लहराने लगती है, उसे देख हमें संपन्नता का अहसास हो जाना, खेतों से निकलती उसकी सौंधी खुशबु हमें मोहित कर लेती है । गाँवों में बसनेवाले अधिकतर लोग खेती या खेती से जुड़े दिखाई देते हैं ।

कई ऐसी समस्याएँ हैं जिसका निवारण होना अनिवार्य है । प्रमुता से आर्थिक असमानता । शुरू से ही हम देखते हैं कि ग्रामीण किसान जमींदारों के शोषण चक्र में पिसता हुआ दिखाई देता है ।

''आजकल ऋण बैंक, सहकारिता बैंक, लैसेंस्ड बैंक और गैर लँसेंस बैंक भी देने लगे । ऋण का अर्थ है 'लोन' । वर्तमान ग्रामीण समाज में बैंकों से ऋण लेना एक फैशन बन गया है । जब किसान अकाल के कारण या फसल ठीक न होने के कारण जब ऋण न चुकाकर वह कष्टों के बवंडर में गिर जाता है, तब सहायता करनेवाले बैंक भी किसान को सताते हैं । ऋण वसूल करने के लिए वे किसान को सताते हैं और अपमान करते हैं । घर के दरवाजे भी खींच ले जाते हैं । कोई इज्जतदार अपना सर्वस्व बेचकर ऋण चुकाता है । जब ऋण नहीं चुका सकता तब वह बेइज्जती का या आत्महत्या का भागी बन जाता है ।''[1]

किसान की खेती मौसम की मेहरबानी पर निर्भर है । मौसम के उतार–चढ़ाव के कारण खेती पर संकट आता है । मौसम का परिवर्तन इस तेजी के साथ होता है कि किसान को संभलने का अवसर ही नहीं मिलता । अतिवृष्टि, सूखा, बाढ़, ओलावृष्टि, आग आदि कारणों से किसान की खेती घाटे में आती है । प्रथम तो नाना प्रकार के विघ्न हैं । हवा है, पानी है, आग है, पशु हैं, पक्षी हैं और वन्य जीवन हैं । चोर–लुटेरे भी हैं । इन सबसे बचता–बचाता यदि सारा अनाज घर पहुँचता है तो वह ऋण चुकाने–भर को तो होता ही है । यदि कुछ बचता है तो दो–एक महिने में समाप्त हो जाता है । लगान है, भोजन है, बीज है बिमारियाँ हैं, को–ऑपरेटिव का कर्जा है । कपड़ा–लत्ता, तमाखू, शादी–ब्याह, नाना रस्मरिवाज आदि का व्यय बढ़ता ही जाता है । ''उसे पुन: ऋण लेना पड़ता है, यदि ऐसी बात हो कि वह जितन लेता है उतना ही देना पड़े तब भी खैरियत होती । ऋण प्रगतिशील होता है । उसकी गतिशीलता के आगे किसान का श्रम गतिशून्य हो जाता है । यह ऋण कभी–कभी तो दूना–चौगुना, यहाँ तक कि बीस गुना–तीस गुना हो जाता है ।.... सारे जीवन को ऋण के बादल आच्छादित करके एकदम धुआँधार कर देते हैं । इस प्रकार यह ऋणचक्र अनवरत गति से चलता रहता है । यदि ऋण बैंक का है, सरकार का है, तब और आफत ।''[2]

किसान और साहूकार का आपसी रिश्ता पीढ़ियों पुराना होता है और पूरी तरह विश्वास पर आधारित होता है । साहूकार ने तो अपनी ही गणित और पहाड़े बना रखे हैं । किसान चुपचाप अपना अँगूठा लगाकर ऋण ले आता है । ये साहूकार ५ रु. प्रति सैंकडा प्रति माह की दर से ब्याज पर किसान को ऋण दे देते हैं जिसकी कोई गारंटी नहीं होती है, और न ही कोई अभिलेख माँगे जाते हैं बल्कि उसकी चल–अचल संपत्ति और उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा को देखते हुए ऋण दिया जाता है । आजकल साहूकार ८ रुपये से १० रुपये तक प्रति सैंकडा प्रति माह की दर से ब्याज ले रहे हैं जिससे किसान आकंठ ऋण में डूब रहे हैं । इतनी भारी ब्याज की रकम अदा करने के बाद भी वह ऋणमुक्त नहीं हो सकता है । अत: लोक–लाज के कारण वह आत्महत्या कर लेता है । ऐसी स्थिति में वित्तीय संस्थाओं से लिए गए ऋण तो प्रकाश में आते हैं परंतु साहूकार द्वारा दिया गया ऋण कहीं भी उजागर नहीं होता । फिर धीरे–धीरे महिलाओं के शरीर पर से जेवर कम होता जाता है । जेवर जो शरीर से उतरकर किसी साहूकार की तिजोरी में गिरवी हो जाते हैं । नई बहू जब घर आती है ता नए घागरे, लुगडे, पोलके, तोडी, बजपट्टी, ठुस्सी, झालर, लच्छे, बैंदा, करघनी भी धीरे–धीरे साहूकार की तिजोरी की शोभा बढ़ाते हैं । गाँवों में आज भी विवाह और मृत्यु दोनों ही किसान–परिवार को समान रूप से कर्जे में डूबाकर चले जाते हैं । विवाह में मेहमान जुटते हैं, पूरे गाँव को और आसपास के रिश्तेदारों को खाना दिया जाता है और मृत्यु होने पर वही होता है । अंतर सिर्फ इतना ही है कि विवाह के अवसर पर उल्लास होता है और किसान की आत्महत्या के कारण हुई मृत्यु पर दु:ख।

खरपतवार नाशक, कीट नाशक और खाद का खर्चा प्रति एकड बहुत ही आता है । पलेवा और सिंचाई, बिजली या डीजल पर का खर्चा करीब ज्यादा ही आता है । फसल की कटाई और मेहनत–मजदूरी आदि अन्य खर्च मिलकर इस प्रकार मोटा–मोटा हिसाब लगाया जाए तो प्रति एकड जो व्यय होता है कि किसान के पास इतना भी नहीं बचता है कि वह ऋण का भुगतान कर सके, परिवार का भरण–पोषण कर सके । छोटे किसान का पूरा परिवार खेतों में मजदूर की तरह लगा रहता है । इसके बाद भी आसमानी–सुलतानी (प्राकृतिक अपदाएँ) हो गई, मौसम की मार पड़ गई और उपज घट गई तो छोटा और सीमांत किसान जीवन भर ऋण में रहता है और उसके लिए आत्महत्या एकमात्र पर्याय बचता है ।

किसानों को समर्थन कर रहे समूह का कहना है कि अनाज की वास्तविक कीमतें किसानों को नहीं मिलती और उन्हें जीएम कंपनियों से काफी महंगे बीज और खाद खरीदने होते हैं । जीएम बीज को खरीदने में कई किसान गहरे कर्ज में डूब जाते हैं । जब फसल की सही कीमत नहीं मिलती है तो उनके लिए आत्महत्या करना यह एकमात्र विकल्प बनता है । विडंबना यह है कि जब भी कृषि उत्पाद बाजार में आता है तो उसके मूल्य निरंतर गिरने लगते हैं और मध्यस्थ या ठेकेदार सस्ती दरों पर उनका माल क्रय कर लेते हैं जिससे कृषि घाटे का व्यवसाय बना हुआ है । दुर्भाग्य है कि संबंधित लोग औद्योगिक क्षेत्रों के उत्पादन की दरें लागत, माँग और पूर्ति को ध्यान में रखते हुए निर्धारित करत हैं । परंतु, कृषि उत्पाद का मूल्य या दरें या तो सरकार या विक्रेता द्वारा निर्धारित किया जाता है । उसमें भी तत्काल नष्ट हो जानेवाले उत्पाद की विक्री के समय किसान असहाय दिखाई देता है ।

भूमंडलीकरण के दौर में कषि पर आधुनिक तकनीकी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के माध्यम से जो इस देश में आती है उसे कृषि का प्रचार–प्रसार तंत्र उन किसानों तक पहुँचाने में लाचार नजर आते हैं, यह विचारणीय एवं गंभीर विषय है । कृषि योग्य भूमि का अंधाधुंध अधिग्रहण किए जाने से कृषि योग्य भूमि अत्याधिक संकुचित होती चली जा रही है, जो बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण हेतू कृषि उत्पादन के लिए अक्षम होगी । संपन्न राष्ट्रों ने विकासशील देशों में कई कारखानों का निर्माण कर वहाँ के जल और वायू के प्रदुषण को बढ़ाया है । बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अैद्योगिक विकास की आड़ में प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन कर रही हैं । परिणामत: ग्लोबल वार्मिंग के खतरे बढ़ रहे हैं । परंतु, 'पाप' बेचने का व्यापार यहाँ खूब चला सकते हैं । कार्बन क्रेडिट की खरीद फरोख्त करके । अपितु, किसानां को डिजल पम्प की जगह पैरां से चलनेवाला पम्प मुक्त में देंगे । 'सेज' बनाने के लिए दो–चार सौ किसानों को उजाड़ देंगे । उनकी गंदी की हुई हवा को साफ करने के लिए किसान यहाँ पेड़ लगाते रहे और घोड़ों–बैलों की तरह शरीर के जोर से सारे काम करते रहे । ग्लोबल वार्मिंग का दायित्व किसानों पर लादा जा रहा है । कार्बन क्रेडिट का व्यवसाय जोरों पर है । विकास के नाम पर किसान, आदिवासी, देहाती, गरीब लोगों को विस्थापित किया जा रहा है । रवि कांत जी के शब्दों में ''वैश्वीकरण और बाजारवाद का प्रभाव विशेषकर भारतीय संदर्भ में किसान, मजदूर, आदिवसी, स्त्री, अल्पसंख्याक और दलित वर्ग पर, संक्षेप में कहें, तो दमित व शोषित वर्गों पर व्यापक रूप से दिखाई दे रहा है ।''[3]

१९९० दशक से भारत में किसानों की आत्महत्या के मामले सामने आते रहे हैं । पहले–पहल महाराष्ट्र में बड़े पैमाने पर किसानों की आत्महत्या की घटनाएँ सामने आई और उसके बाद देश के अन्य राज्यों में भी किसानों की आत्महत्याएँ देखने

को मिली । जहाँ पहले देश में किसानों की आत्महत्या की खबरें महाराष्ट्र के विदर्भ और आंध्र प्रदेश के तेलंगन क्षेत्र से ही आती थी, वही अब इसमें नए इलाके जुड़ गए हैं । इनमें बुंदेलखंड जैसे पिछड़े इलाके नहीं, बल्कि देश की हरित क्रांति की कामयाबी में अहम भूमिकावाले हरियाणा, पंजाबा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश जैसे राज्य शामिल हैं । इसके साथ ही औद्योगिक और कृषि विकास के आंकडों में रिकार्ड बनानेवाले गुजरात के क्षेत्र शामिल हैं । राज्यस्थान और मध्यप्रदेश के किसान भी अब आत्महत्या जैसे घातक कदम उठा रहे हैं । ब्रिटेन के निवेशक जिम रोजर्स ने बीबीसी के एक बहस के दौरान कहा कि पिछले कुछ सालों में भारत में लाखों किसानों ने आत्महत्या की है । अधिकारिक तौरपर वर्ष १९९५ से अब तक २,७०,००० किसानों ने आत्महत्या की है । हर साल भारत में हजारों किसान आत्महत्या करते हैं । सरकार के ताजा आंकडों के मुताबिक, भारत में प्रति एक लाख लोगों में १५ लोग आत्महत्या करते हैं । खेती से जुड़े लोगों में यह हिस्सेदारी घटकर प्रति लाख ७ लोंगों की हो जाती है । वर्ष २००७ तक महाराष्ट्र में ४२३८, आंध्र प्रदेश में १७९७, कर्नाटक में २१३५, मध्यप्रदेश में १२६३ किसानों ने आत्महत्या की है ।

''बैंक का कर्ज चुकाने में अपनी पूरी जिंदगी की कमाई लुटा देने के बाद मौसम और सरकारी नीतियों की मार झेलते किसी किसान की आत्महत्या सिर्फ इस आधार पर सरकारी दस्तावेजों में किसान की आत्महत्या के रूप में दर्ज नहीं होती कि बैंक के लेजर्स में उसके विरूद्ध कर्ज की कोई रकम बाकी नहीं है । जिंदगी की महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारियों के बीच बार-बार हानी उठाने के बाद आत्महत्या को मजबूर हुये किसी नवयुवक की आत्महत्या एक किसान की आत्महत्या नहीं मानी जाती । क्योंकि सरकारी दस्तावेजों में भू-स्वामी के नाम के सामने उस किसान-पुत्र का नाम न होकर उसके पिता का नाम अंकित होता है । आंकडों के गणित के आधार पर अपने राज्यों की छबि और सरकारी कोषों की निधि बचाने सरकारी वादें अंतत: किसान विरोधी ही साबित होती हैं ।''[4]

महाराष्ट्र की कृषि समस्या का एक छोर कपास से जुड़ा होता है तो दूसरा गन्ने की खेती से । कपास की खेती करनेवाले किसान जहाँ अनुचित मूल्य निर्धारण, महँग और धरती की उर्वरा शक्ति का दोहन करनेवाल बीज, महाजनों और साहूकार के रक्तचूसक ब्याज और बिघड़ते मौसम चक्र के प्रतिकूल आघातों के बीच पारिवारिक जिम्मेदारी और सामाजिक प्रतिष्ठा के निर्वहन में नाकामयाब होकर आत्महत्या करने को मजबूर है । गन्ना किसानों का सुख-चैन भी प्रदेश की राजनीति दखल रखनेवाले चीनी मिल मालिकों की आंतरिक उठापटक और रायवलरी की भेट चढ़ जाता है । नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो द्वारा प्रस्तुत आंकडों के अनुसार १९९५ के बाद हमारे देश में आठ लाख किसानों ने आत्महत्या की है, जिसमें महाराष्ट्र के कपास-किसानों की संख्या सर्वाधिक है । कपास की खेती करनेवाला चीनी किसान लगातार समृद्ध होता जा रहा है और भारतीय किसान लगातार आत्महत्या को मजबूर क्यों है ? पिछले साल उत्तर प्रदेश से किसानों के आत्महत्या की खबरें आई तो उसकी वजह वहाँ किसानों का चीनी मिलों पर हजारों करोड रुपयों का बकाया है । उसके बाद हालात और बदतर हुए हैं । अभी भी उत्तर प्रदेश की चीनी मिलों पर किसानों का करीब आठ हजार करोड रुपये बकाया है । बड़ी तादाद में ऐसे किसान है जिनकी जोत दो एकड या इससे भी कम है, लेकिन उनको दो साल से गन्ना मूल्य का अंशिक भुगतान ही हो सका है ।

मिडिया फॉर राइटस् संवाद की अपनी वेब सामग्री में लिखते हैं- ''किसानों की आत्महत्या के तात्कालिक ८ प्रकरणों का विश्लेषण हमें इस नतीजे पर पहुँचाता है कि सभी किसानों पर कर्ज का दबाव था । फसल का उचित दाम नहीं मिलना, घटता उत्पादन, बिजली नहीं मिलना परंतु बिल का बढ़ते जाना, समय पर खाद, बीज नहीं मिलना और उत्पाद कम होना । मध्य प्रदेश के किसानों की आर्थिक स्थिति के बारे में चौकाने वाले आंकडे सामने आ रहे हैं । प्रदेश के हर किसान पर औसतन १४ हजार २१८ रुपये का कर्ज है । वहीं प्रदेश के कर्ज में डूबे किसान परिवार की संख्या भी चौकानेवाली हैं । यह संख्या ३२,११,००० है । मध्य प्रदेश के कर्जदार किसानों में २३ फीसदी किसान ऐसे हैं, जिनके पास २ से ४ हेक्टर भूमि है । साथ ही ४ हेक्टेर भूमि वाले कृषकों पर २३,४५६ रुपये कर्ज चढ़ा हुआ है । कृषि मागलों के जानकारों का कहना है कि प्रदेश के ५० प्रतिशत से अधिक किसानों पर संस्थागत कर्ज चढ़ा हुआ है । किसानों के कर्ज का यह प्रशित सरकारी आंकडों के अनुसार है, जबकि किसान नाते/रिश्तेदारों, व्यावसायिक साहूकारों, व्यापारियों और नौकरीपेशा से भी कर्ज लेते हैं । जिसके चलते प्रदेश में ८० से ९० प्रतिशत किसान कर्ज के बोझ तले दबे हैं ।''[5]

पश्चिम बंगाल में और भारत वर्ष में कृषक वर्ग के असंतोष और विद्रोह का इतिहास समकालीन घटना मात्र नहीं है । दार्जिलिंग जिले के नक्सलवादी, खडीबाडी और फाँसी लगनेवाले अधिकांश भाग के रहनेवाले भूमिहीन किसान हैं । सथानीय जमींदारों ने बहुत दिनों से चली आ रही 'अधिया' की व्यवस्था में उन पर अपना शोषण जारी रखा । इसके विरोध ही किसानों

का असंतोष और विद्रोह है । उस आंदोलन में एक ही तरह से वंचित–शोषित किसान को आंध्र में, केरल में, तमिलनाडू में, बिहार में और उडिसा में प्रेरणा दी । जिसे नक्सलवादी आंदोलन नाम दिया गया है ।

''आज विश्व एक ऐसी जटिल और खतरनाक अवस्था से गुजर रहा है कि भूमंडलीकरण एक शब्द नहीं रहा–एक संस्कृति है ।....आज विश्व बाजार–व्यवस्था में राष्ट्रीय पूँजी अंतरराष्ट्रीय पूँजी की पारस्पारिकता इतनी बढ़ी है कि दोनों एक हो गए हैं ।''६

निष्कर्ष –

निष्कर्ष से हम कह सकते हैं कि आज देश का किसान विकसनशील होता नजर आ रहा है । किंतु यह प्रश्न तो उठता है कि इस देश का किसान जो पूरे देश को भूख से बचाने का महत्त्वपूर्ण कार्य करता है मगर वह स्वयंम भूखा रहता है, वह पेठभर खाना नहीं खाता, यही किसानों की व्यथा है ।

संदर्भ –

१. अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का चित्रण – डॉ. मोहद जमील अहमद, अन्नपूर्ण प्रकाशन, कानपुर, पृ. १६४

२. अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का चित्रण – डॉ. मोहम्मद जमील अहमद, अन्नपूर्ण प्रकाशन, कानपुर, पृ. २३८

३. 'वागर्थ', मासिक पत्रिका, अंक–२२४, मार्च २०१४, पृ. ६६

४. समालोचन : परख : फाँस (संजीव), राकेश बिहारी, पृ. ३

५. www.mediaforright.org, पृ. २

६. समकालीन भारतीय साहित्य – द्वैमासिक पत्रिका, जुलाई–अगस्त, २०११, पृ. २०४